RESEARCH FRONT

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

सामाजिक न्याय और बाबू जगजीवन राम

डॉ0 सन्तसरन
पोस्ट डाक्टोरल फेलो,
आई0सी0एस0एस0आर0, नई दिल्ली।

सारांश

प्रस्तुत शोध–प्रपत्र में बाबू जगजीवन राम द्वारा सामाजिक न्याय के क्षेत्र में किये गये प्रयासों, सुधारों एवं उपलब्धियों को विवेचित किया गया है। बाबू जी का मानना था कि भारत देश में आजादी के बाद की स्थितियों में गरीबों और कमजोरों को दैनिक जीवन की मौलिक जरूरतें उपलब्ध कराना सरकार की नैतिक जिम्मेदारी होगी। संविधान में इनके लिए पर्याप्त विधानों का निर्माण किया गया साथ ही उनके क्रियान्वयन की उचित व्यवस्था की गई। लेकिन वास्तविकता में उनका पालन अंशतः ही हो पाया। उनका मानना था कि राष्ट्र की नैतिक जिम्मेदारी देश के लाखों मेहनतकश लोगों को समुचित आश्रय, स्वस्थ्य रहने की परिस्थितियाँ और कम से कम प्रतिदिन दो बार भोजन मुहैया कराने में निहित है। सामाजिक दर्शन के विकास में सामाजिक सुरक्षा एक नवीन धारणा है और इसे सार्वभौमिक दृष्टि से सामाजिक और आर्थिक उथल–पुथल के विरुद्ध एक मात्र रक्षोपाय माना गया है। राज्य को सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में सामान्य भलाई हेतु जनसामान्य के लिए मौलिक और प्रारम्भिक सुरक्षा प्रदान करने की जिम्मेदारी का निर्वाह करना है। बिहार, बंगाल और उड़ीसा में बहुसंख्यक आबादी के पास प्राकृतिक संसाधन नाममात्र के थे। जो संसाधन थे उनका वितरण जाति विशेष के हाथों में था जिन्हें भारतीय जाति सोपान तंत्र में सबसे ऊपर के क्रम में रखा गया है। अतएव इन तथाकथित बहुसंख्यक कमजोर वर्ग के लोगों को दूसरे के खेतों में मजदूरी व बेगार करना पड़ता था। बाबू जी देश के समावेशी विकास के स्वप्नदृष्टा थे जिसको उन्होंने अपनी कार्यशैली में चरितार्थ किया।

कुन्जी शब्द– राजतन्त्र, श्रमिक, दयनीय, दासता, बन्धुआ, उत्पादन, लूटपाट, कल्याण, ।

परिचय

''न्याय की संकल्पना प्राचीन काल से ही राजनीतिक चिंतन का महत्वपूर्ण विषय रहा है। परन्तु आधुनिक युग आते–आते इसमें भौतिक परिवर्तन हो गया।'' समाज के वे अंग जिन्हें सदियों से न्याय की प्रक्रिया से दूर रखा गया और फलतः न्याय का मिलना उनके लिए दुर्लभ ही नहीं असम्भव हो गया, उन वर्गों को न्याय दिलाने की बात करना ही सामाजिक न्याय की संकल्पना है।

''राजनीतिक न्याय 'स्वतंत्रता' के आदर्श को प्रमुखता देता है, आर्थिक न्याय 'समानता' के आदर्श को महत्व देता है और सामाजिक न्याय ' बंधुता' के आदर्श को साकार करना चाहता है। इन तीनों को मिलाकर ही सामाजिक जीवन में न्याय के व्यापक आदर्श की सिद्धि की जा सकती है। अतः सामाजिक न्याय की संकल्पना स्वतंत्रता, समानता और बंधुता के आदर्शों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न है।''

भारतीय समाज का आधार ही अन्यायपूर्ण जातिगत जन्म आधारित था। इस परिप्रेक्ष्य में यह देखें कि वर्ण संघर्ष को प्राश्रय मिला। बाबू जगजीवन राम को दलितों के साथ होने वाले अमानवीय अत्याचारों का मर्म था, अतएव उन्होंने कमजोर, शोषित, मेहनतकश, बहुसंख्यक जनता के लिए सदैव सामाजिक सशक्तिकरण के लिए तन्मयता से कार्य किया। भारत के सर्वांगीण विकास के लिए सामाजिक न्याय की जरूरत दलित एवं कमजोर वर्ग के लोगों के लिए सबसे ज्यादा आवश्यक थी। सामाजिक न्याय, समतामूलक समाज के निर्माण के महत्वपूर्ण तत्व है।

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

''भारत के विभिन्न भागों में, अलग–अलग जाति सम्बन्धी व्यवस्थाएं हैं और आर्थिक विकास, शिक्षण के विस्तार और सामाजिक सुधारों की दृष्टियों से भारी अन्तर भी है। उनके प्रभाव भी अलग–अलग हैं।''[प]

भारतीय समाज में इतनी विभिन्नताएं हैं जिन्हें समझना और उससे निपटना बहुत ही दुर्लभ है। जैसे यहां जाति व्यवस्था जो प्राचीन काल से लेकर आज तक देश के समावेशीय विकास में इस कदर से हावी और अपना नकारात्मक प्रभाव लिए हुए व्याप्त है। अनपढ़ और अज्ञानी होने के बावजूद भी जाति विशेष में जन्म लेने पर समाज में वही प्रतिष्ठित होता है जो तथाकथित उच्च जाति में जन्म लेता है। भारत देश ही नहीं अपितु भारतीय उपमहाद्वीप के देशों में ये कुप्रथायें व्याप्त रहीं हैं। यहां पर छाप–तिलक, विशेष वस्त्रों का परिधान से परिपूर्ण व्यक्ति को ही समाज में प्रतिष्ठित समझा जाता है। भारतीय समाज का सामाजिक संरचनात्मक ढांचा लोकतांत्रिक नहीं है। यह जन्मजात असमानताओं पर आधारित है, और अनेक जातियों, उपजातियों में बंटा हुआ है, जिसमें दलित समाज सबसे निचले पायदान पर विराजमान है और जिनका अतीत बेहद दुखद है। उन्हें कोई सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक अधिकार नहीं हासिल था।

बाबूजी का जन्म बिहार प्रांत में हुआ था, वहां पर सामन्ती वर्ग का प्रादुर्भाव प्राचीन काल से ही था। आधुनिक बिहार में भी भूमि और प्राकृतिक संसाधन आज भी तथाकथित (अल्पसंख्यक) उच्च जातियों के कब्जे में हैं। जबकि बहुसंख्यक लोग आज भी बिना भूमि एवं प्राकृतिक संसाधनों से महरूम हैं। अतएव उन्हें सवर्णों की दया पर जीवन यापन करना पड़ता है। जिसके बदले बन्धुवा मजदूरी एवं बेगार करनी पड़ती है। बिहार में मुख्यतः दो ही वर्ग उच्च और निम्न वर्ग हैं, इसलिए शोषण चरम पर देखने को मिलता है। मध्यम वर्ग का प्रादुर्भाव इन कारणों से भी नहीं हो सका कि जो लोग अपने अस्मिता, सम्मान, गरिमा और पहचान की लड़ाई लड़ रहे थे। मध्य कालीन भारत में जहां एक ओर सन्त आंदोलन तो दूसरी ओर भक्ति आंदोलन हुआ जो संत आन्दोलन से प्रेरित एवं प्रति आन्दोलन था।[पप] बाबू जगजीवन राम संत परंपरा से प्रेरित थे इनके पिता शोभी राम जी संत थे। वह शिवनारायनी सम्प्रदाय से निकले थे। बाबू जगजीवन राम का हृदय हरिजन समुदाय की दयनीय दशा देखकर पीड़ित होता है। उनका पोषण संत परम्परा में हुआ; फलतः उन्होंने हिन्दू कट्टरता की दासता में जकड़े करोड़ों लोगो की आत्मा को मुक्त करने के निमित्त, एक नई धर्म–संस्था स्थापित करने की कल्पना भी की।[पपप] सामाजिक न्याय के परिप्रेक्ष्य में उन्नीसवीं शताब्दी के धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आन्दोलन का विशेष स्थान है। अपने बहुमुखी स्वरूप और व्यापकता के कारण इस आन्दोलन ने भारत की तत्कालीन जड़ता को समाप्त किया और देश के जन जीवन को झकझोर दिया।

साथ भारत में उद्योगीकरण ने सामाजिक कुप्रथाओं की नींव दी। वे अछूत जो देहातों से शहरों में आते, एक अलग ही तरह का जीवन पाते। उनके दिलों में यह धारणा बंधने लगी कि वे भी इन्सान हैं और वे भी अच्छे जीवन की कामना कर सकते हैं।[पअ] ब्रिट्रिश भारत में समाज में गतिशीलता आने से अन्यत्र जाकर बस गये। सबसे पहले छठी शताब्दी ईसा पूर्व में मगध महाजनपद का उदय होता है और उसके बाद पाटलिपुत्र (पटना) देश की सत्ता को संचालित करने वाला केन्द्र बिन्दु हुआ करता था। प्राचीन काल में न्याय के निर्धारण का आधार ईश्वरीय था। ईश्वर या किसी पैगम्बर द्वारा जो कुछ कहा गया, वह ही न्याय था। विवादास्पद प्रकरणों में सन्त, पीर, पादरी जो ईश्वरीय शक्ति से विभूषित माने जाते थे, के मत को निर्णायक माना जाता था। दैवी शक्ति के नाम पर समाज में पुरोहित व शासक वर्ग का न्यायिक वर्चस्व था, किन्तु यह व्यवस्था लम्बे समय तक कायम नहीं रही।[अ] कालान्तर में न्यायसूचक मापन का आधार संसर्ग के स्थान पर शक्ति आधारित हो गया। सर्वशक्ति सम्पन्न होने से राजा लौकिक जीवन में न्याय का प्रतिरुप बना। वैसे राजतन्त्र का विकास वास्तव में ईश्वरतन्त्र (या धर्मतन्त्र) से ही रक्षा के उद्देश्य से हुआ। पुरोहित वर्ग ने राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि निरूपित किया। तद्नुसार धर्म

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

सम्मत व्यवस्था की रक्षा करना राजा का मुख्य दायित्व हो गया, किन्तु धार्मिक कार्यों के सम्पादन तथा नियमों के निर्माण का अधिकार कमोवेश पुरोहित वर्ग के पास ही रहा। पुरोहित चतुर्वर्णीय व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण वर्ग से ही होते थे।

भारत देश विचित्र है। यहाँ की सामाजिक संरचना जाति के पिरामिडनुमा ढांचे पर आधारित है।[अप] वर्ण–जाति संस्था दुनिया की एक मात्र ऐसी संस्था है, जो लोकतन्त्र के मौलिक सिद्धान्तों के प्रतिकूल है। जो सामाजिक न्याय के लिए घातक है। यानि वर्ण–जाति ढांचे को ध्वस्त किये बगैर भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना की बात निरर्थक है। वर्ण–जाति ढांचे का सबसे विकृत रुप अस्पृश्यता है। विश्व इतिहास के किसी भी काल में अस्पृश्यता से दुखदायी कोई अन्य सामाजिक बुराई देखने को नहीं मिलती। अतः भारत में स्वयं को जनवादी या प्रगतिशील घोषित करने वाले बुद्धिजीवियों को मूलतः वर्ण–जाति एवं अस्पृश्यता को नष्ट करने के दृष्टिकोण से रचनाएं करनी चाहिए थी, तथा वर्ण–जाति आधारित सामाजिक संरचना के विरुद्ध संघर्षरत दलों, संगठनों को समर्थन करना चाहिए। भारत में बौद्धिक–नैतिकता का यह नैसर्गिक पहलू है।

स्वतन्त्रता, सामाजिक न्याय का यद्यपि एक आवश्यक व महत्वपूर्ण तत्व है तथापि अधिक निश्चित अर्थ में सामाजिक न्याय से आशय आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों में समानता की स्थापना है। स्वतंत्रता कतिपय बुनियादी आधिकारों की कल्पना करती है, जो व्यक्ति के नैसर्गिक विकास के लिए जरुरी है। किन्तु अधिकारों का शायद ही कोई अर्थ है, यदि समाज की रचना असमान सिद्धान्त पर हुई हो। एक न्यायपूर्ण व्यवस्था वह है जो समानता पर आधारित हो। व्यवस्था में जितनी अधिक विषमता होती है, अन्याय व शोषण की सम्भावना भी उतनी ही अधिक होती है।

सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए लोकतंत्र आवश्यक है जो केवल राजनैतिक लोकतंत्र से सामाजिक न्याय की स्थापना नहीं हो सकती बल्कि सामाजिक लोकतंत्र अति महत्वपूर्ण है। समाजिक न्याय के संबन्ध में डॉ. राम मनोहर लोहिया का मानना था कि '' जिस दिन प्रशासन और फौज में भर्ती के लिए और बातों के साथ–साथ शूद्र और द्विज के बीच विवाह की मान्यता और सहभोज के लिए इन्कार करने पर अयोग्यता मानी जायेगी, उस दिन जाति पर सही मायनों में हमला शुरू होगा। वह दिन अभी आना है।''[vii]

आर्ययुगीन काल क्रम में अनार्यों (भारत के मूलनिवासियों) के रुपान्तरण की प्रक्रिया दलित बनने तक के काल तक उन्हें शिक्षा, संस्कार, संस्कृति, संगठन, संघर्ष करने की शक्ति, चेतना, साहित्य, श्रम का महत्व, रोजगार, व्यवसाय, सम्मान सब कुछ नष्ट कर दिया। अपने खोये हुए सारे मूल्यों को पाने की चेतना ही दलित चेतना है।इस चेतना को राष्ट्रीय स्तर पर कई महापुरुषों ने दलितों एवं पिछड़ों के बीच पहुँचाया। समता, स्वतंत्रता और बन्धुत्व की बुनियाद पर निर्मित भारतीय संविधान का यह उज्जवल पक्ष है कि कल के बन्धुआ मजदूर बनकर पशुवत जीवन जी रहे दलित आज स्वाभिमान से जीवन जी रहे हैं।

इसी प्रकार स्वतंत्रता का अर्थ गमनागमन, वाणी, निर्धनता, बीमारी, अन्धविश्वास, असमानता और अशिक्षा से मुक्ति भी है। एक भूखे, निर्धन, रोगग्रस्त व अशिक्षित व्यक्ति के लिए स्वतंत्रताका कोई अर्थ नहीं है क्योंकि वह अपने अस्तित्व के लिए दूसरों की दया पर निर्भर है।[अपपप]

अछूतों के ऊपर इस तरह के अत्याचारों को ईश्वरीय ताने–बाने में रखा गया। ''राहुल सांकृत्यायन वेद शास्त्रों की सत्ता को ही दिमागी गुलामी कहते हैं और यही दिमागी गुलामी जाति व्यवस्था को सुरक्षित रखती है। राहुल सांकृत्यायन ने यहाँ डा0 अम्बेडकर से सहमत दिखायी देते है। या दूसरे शब्दों में अम्बेडकर की तरह राहुल जी भी मानते हैं कि शुद्ध राष्ट्रीयता तब तक नहीं आ सकती, जब तक जाति–पाति तोड़ने पर तैयार न हो।[पग] यदि जाति संस्था समाज में व्याप्त रहेगी तो समाज में कभी एक राष्ट्र की भावना का उदय नहीं हो सकेगा।

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

वे दलितों के अंदर ऐसा शन्तिपूर्ण परिवर्तन लाना चाहते थे, जिससे उनके न केवल रहन–सहन का स्तर सुधारे बल्कि वे अपने योगदान के बार में भी सजग रहें। वे दलितों की दयनीय दशा बदलना चाहते थे ताकि उनकी आर्थिक स्थिति सृदृढ़ हो और वे अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाकर उन्हें संगठित कर सकें।

बाबू जगजीवन राम ने न्यूनतम मजदूरी की समस्याओं पर ब्रिटिश सरकार को उनकी (श्रमिकों) की ओर से ज्ञापन दिया और साथ ही साथ इस सम्बन्ध में मजदूरों के साथ धरना भी दिया तथा मजदूरों की गृहणियों को एकत्र कर सदैव घरों की सफाई रखने और बच्चों को शिक्षित करने को कहा जिससे मजदूर का बेटा फिर मजदूर न बने। इसके तहत उन्होंने कलकत्ता की अनेक बस्तियों मे पाठशालाएं स्थापित कीं, जिससे श्रमिकों के बच्चों को शिक्षा शुलभ पहुँच सके। वे देश के बुनियादी ढांचें में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के पक्षधर थे। उन्होंने 1937 में खेतिहर मजदूर सभा बनायी, और खेतों में बेगार करवाने, कम मजदूरी पर काम करवाने और श्रमिकों पर ज्यादतियों का प्रखर विरोध किया।

बाबूजी आजादी की लड़ाई में शामिल रहते हुए ऐसे गरीबों, पिछड़े, शोषितों की आवाज बुलन्द करते थे, जिनका कोई ऐसा संगठन या मंच नही था जिससे वे अपनी बात कह सके या अपने सुख–दुःख को बाँट सके। बीसवीं शताब्दी के मध्यान्तर तक आते–आते वे ''गरीबों का मसीहा'' के रूप में स्थापित हो चुके थे। श्रमिकों के लिए संघर्ष एवं उनके प्रति विचारों को देखते हुए अन्तरिम सरकार 2 सितम्बर 1946 को गठित मंत्रिमण्ड़ल में उन्हें श्रम मंत्रालय दिया गया। उन्होंने तन्मयता से एवं बडी सूझ–बूझ के साथ श्रमिकों की समस्याओं का निपटारा किया एवं श्रमिकों के हितों को सुरक्षित किया। उस समय 'लागू श्रमिक विधान' जो श्रमिकों के हितों में बाधा बने हुए थे।

बाबू जी की प्रेरणा से अनेक दलित आजादी की लड़ाई में सम्मिलित हुए और उसे शक्ति दी। इसके फलस्वरूप भारत आजाद हुआ। अछूतिस्तान की मांग पर बाबू जी ने तीसरे विभाजन को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। बाबू जी ने यह प्रावधान कराया कि जो हरिजन जिस जिस जमीन पर मजदूर के रूप में खेती करता आ रहा है, वह उसका मालिक बना दिया जाये। समय–समय पर भूमिहीन दलितों और गरीबों के बीच भूमि वितरित की गई। फलस्वरूप बड़ी तादात में भूमिहीन मजदूर से भू–स्वामी बन गये।

एक ''राजनीतिक इकाई'' के रूप में दलित वर्गों को सबसे पहले 1919 के अधिनियम में स्वीकृति मिली। उन्हें भी समाज में व्याप्त जातिगत ऊँच–नीच का मर्म था। डॉ0 अम्बेडकर के प्रति सम्मान के बावजूद, उन्होंने गांधी के नेतृत्व को चुनौती देने और धर्म परिवर्तन जैसी अंबेडकर की राह का अनुसरण करने से इन्कार कर दिया और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नीतियों को मानते हुए कांग्रेस के ध्वज तले अछूतोद्धार में लगे रहे।

जगजीवन राम, गांधी द्वारा स्थापित ''हरिजन सेवक संघ'' के प्रथम मंत्री हुए थे परन्तु आगे चलकर इन्होंने देखा कि हरिजन सेवक संघ में सवर्ण हिन्दुओं का ही प्राधान्य है और उसका कार्य केवल 'हरिजन कल्याण' के रूप में है। उससे समाज सुधार को कोई बल नहीं मिल रहा है। उन्हें अच्छी तरह से मालूम था कि दलितों की दशा और उनको सही दिशा में ले जाने का कार्य सिर्फ और सिर्फ दलित कर सकते हैं। जगजीवन राम चाहते थे कि दलितों के सारे नेता चाहे, वे किसी भी दल के हों, एक मंच पर एकत्रित होकर आवाज उठायें, इस प्रकार इनके प्रस्ताव पर दलित एकता सम्मेलन द्वारा 28 जुलाई 1935 को 'अखिल भारतीय दलित संघ' का निर्माण हुआ।

उनका मानना था कि समाज की मुख्य धारा में रहकर ही बहुमुखी समेकित विकास की बात की जा सकती है। साथ ही उनका यह भी विश्वास था कि बिना आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक क्रांति के दलित वर्ग के लोग सम्मान, सत्ता और मर्यादा नहीं पा सकेंगे।

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

24–25 अप्रैल, 1937 को आयोजित चंपारन दलित की सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय भाषण में जगजीवन राम ने दलितों की वर्ग–चेतना, आर्थिक–राजनीतिक अधिकार, धर्मान्तरण, राष्ट्रीय आन्दोलन, आत्मसम्मान तथा स्वावलंबन जैसे विषयों पर अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए कहा था कि, 'मैं यह बिल्कुल साफ कर देना चाहता हूँ कि हमारा संगठन हमेशा खुद को वर्ग संघर्ष और वर्ग–ईर्ष्या से अलग रखेगा। यह रक्षात्मक किस्म का संगठन है जिसका उद्देश्य हमारे समाज को सुधारना और पुनर्गठित करना है। हम देश की अग्रगति में शामिल हैं। साथ ही सवर्ण हिन्दुओं के साथ हमारा मतभेद सामाजिक और आर्थिक है, सांस्कृतिक नहीं। साथ ही उन्होंने दलितों के आत्मसम्मान और स्वावलम्बन की भावना पर बल देते हुए सम्मेलन का आह्वान किया कि उत्पीड़न करना पाप है। उत्पीड़न को चुपचाप सहना उससे भी बड़ा पाप है। इसके प्रतिकार में अपने प्राणों की बाजी लगा देना ही मर्दानगी है।

व्यक्ति के सम्मान की गणना भी उसके जीवन के अस्तित्व तथा विकास के स्तर के आधार पर की जाती है। जिसके पास बढ़िया खाना है, बढ़िया मकान है और बढ़िया कपड़ा है, अच्छी शिक्षा है और प्रचुर धन, वैभव है वह समाज मे प्रतिष्ठित होता है।[ग] अशिक्षित, गरीब, फटे–गन्दे कपड़े वाले व्यक्ति की समाज में कोई प्रतिष्ठा नहीं होती। समाज की इन्हीं सब बुराइयों को दूर करने के लिए बाबू जी ने राष्ट्रवादी आन्दोलन के साथ–साथ युवा अवस्था में ही निचले स्तर (गरीब, मजदूरों के कमजोर वर्गों) पर जो बहुसंख्यक थे, के लिए कार्य किया। बाबूजी ने गरीबी को बहुत करीब से देखा था उन्हें पता था संसाधन विहीन होने का दुःख।

भारत में बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में मजदूरों पर अत्याचार चरम् पर थी इन बातों को देखते हुए बाबू जगजीवन ने 1937 में खेतिहर मजदूर सभा बनायी जो मुख्यतः खेतों में काम करने वाले श्रमिकों के शोषण के खिलाफ वास्तविक संगठन था। खेतिहर मजदूर सभा खेतों में बेगार करवाने, कम मजदूरी पर काम करवाने वाले और श्रमिकों पर ज्यादतियों के विरोध में बिहार एसेम्बली पर खेत मजदूरों का प्रदर्शन भी हुआ। युवा जगजीवन राम ने उन्हें संगठित किया और उनमें अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता पैदा की। बाबूजी आजादी की लड़ाई में शामिल रहते हुए गरीबों पिछड़ों शोषित की आवाज बुलन्द करते थे, जैसे वे लोग, जिनका कोई संगठन नहीं है, कोई मंच नहीं है जिस पर वह अपनी बात कह सके या अपने सुख–दुःख को बाँट सके, के लिए सोचा और कार्य किया और बीसवीं शताब्दी के माध्यांतर आते–आते 'गरीबों का मसीहा' के रूप में स्थापित हो चुके थे।

बाबू जी अन्तरिम सरकार एवं स्वतंत्रता पश्चात श्रम मंत्री बने। उस समय लागू 'श्रमिक विधान' जो श्रमिकों के हितों की रक्षा बाधा बने हुए थे। उन्हें संशोधित किया ताकि वे श्रमिकों के हितों की रक्षा करें या उनके स्थान पर उन्होंने नवीन अधिनियम बनाये जो श्रमिकों के लिए कल्याणकारी थे।

सामाजिक न्याय के विचार ने आधुनिक युग में व्यक्ति के स्वतंत्रता व समानता के विविध प्रावधानों के साथ रंग, लिंग व जन्मजात भेदभाव की समाप्ति तथा शोषण व बेगार से मुक्ति पर जोर दिया है।[गप] सामाजिक न्याय अर्थात् स्वतंत्रता, समानता एवं व्यक्तित्व की गरिमा की विवेचना में उसका भौतिक पक्ष बहुत ही महत्वपूर्ण है।[गपप] उदाहरण के लिए हम जब समानता की बात करते हैं तो प्रश्न उठता है कि समानता किस बात में, क्या व्यक्ति के रुप में समानता अथवा उसके पास क्या है– उसकी मात्रा और गुण में समानता। बाबू जी सामाजिक न्याय की स्थापना की स्थापना के सम्बन्ध में जीवन दर्शन ही अलग था। बाबू जगजीवन राम का हृदय कमजोर वर्गों की दयनीय दशा देखकर पीड़ित होता है। अतएव वह कहते थे, कि पंक्ति में खड़े सबसे आखिरी व्यक्ति को सामाजिक न्याय मिलना चाहिए।

निष्कर्ष

बाबू जगजीवन राम सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए कमजोर, शोषित, मेहनतकश, बहुसंख्यक जनता को मुख्य धारा में न लाना ही सबसे बड़ा अवरोध मानते थे। अतएव उन्होंने इनको

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

रोजगार के अवसर और संगठनात्मक तरीके से उनके शोषण के खिलाफ आवाज उठायी। भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना के बाद जहाँ एक ओर औपनिवेशिक शासन के खिलाफ संघर्ष की शुरूआत हुई, वहीं दूसरी ओर भारतीय समाज की कमजोरियों का आंकलन, विश्लेषण तथा उनके निवारण की कोशिशें भी तेज हुईं। अपने समाज की अन्दरूनी कमियों को लेकर प्रबुद्ध भारतवासियों के बीच गहन आत्ममंथन का दौर चला। इसी आत्ममंथन के बीच से कई धर्म सुधार तथा समाज सुधार आन्दोलनों का जन्म हुआ, कुछ नई राजनीतिक विचारधाराएं सामने आयीं और कुछ महत्वपूर्ण विचार–शाखाओं की नींव रखी गई। उपनिवेशवादी ताकतों के ह्रदयस्थल में क्रियाशील वैचारिक स्कूलों का भी अध्ययन–मनन किया गया और प्रगतिशील समाज के निर्माण के सन्दर्भ के रूप में उनका भरपूर उपयोग भी किया गया। इन्हीं परिस्थितियों के बीच दलित आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ। दलित आन्दोलनों ने न केवल हिन्दू समाज की विकृतियों और ज्यादतियों की आलोचना की बल्कि साथ ही हिन्दू धर्म के ऊपर प्रहार भी किया।

सन्दर्भ सूची

i मोहन सुरेन्द्र, ''समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय'', प्रथम संस्करण 2006, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ–315

ii प्रो0 भूरे लाल से साक्षात्कार के दौरान 14.02.2010

iii देवी सुमित्रा, ''श्री जगजीवन राम जीवन और महानता'', प्रथम संस्करण, 1955, नई दिल्ली, पृष्ठ–प्राक्कथन से

iv देवी सुमित्रा, ''श्री जगजीवन राम जीवन और महानता'', प्रथम संस्करण, 1955, नई दिल्ली, पृष्ठ–2

v सिंह डा0 रामगोपाल, ''सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष'', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, 2006 संस्करण। पृष्ठ–1

vi प्रसाद चन्द्रभान, ''जन आन्दोलन का सजग प्रहरी (बौद्धिक नैतिकता),'' नई दिल्ली, अंक– 1998 मई।

vii प्रसाद बाल्मीकि, ''बौद्ध धर्म और सामाजिक न्याय'' प्रथम संस्करण, 2006, सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ–155

viii वही पृष्ठ–27

ix भारतीय कंवल, ''राहुल सांकृत्यायन और डा0 अम्बेडकर; बौद्ध धर्म, आर्य सिद्धान्त और अछूतों उद्धार'', प्रथम संस्करण 2007, प्रकाशक; साहित्य उपक्रम, दिल्ली। पृष्ठ–01

x सिंह डा0 रामगोपाल, ''सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष'', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, 2006 संस्करण,पृष्ठ–13

xi चाण्डी के0 टी0, ''सोसल जस्टिस एण्ड बेसिक रिक्वायरमेण्ट्स फार इक्जिस्टेन्स; लीगल न्यूज एण्ड व्यूज'', पृष्ठ–14

xii सिंह डा0 रामगोपाल, ''सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष'', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, 2006 संस्करण,पृष्ठ–13